महर्षि के जीवन पर एक दृष्टि

ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि होने का गौरव गुजरात प्रान्त को है। पिता जन्म के ब्राह्मण थे, और भूमिहारी तथा जमीदारी का कार्य करते थे। शिव के बड़े भक्त थे। शिवरात्रि के दिन बालक को मन्दिर में ले गए और उसे उपवास करा जागरण का आदेश दिया। जब बड़े-बड़े शिव-भक्त सो गए, यह भावी ऋषि प्रयत्नपूर्वक जागता रहा। गीता के कथनानुसार-

"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।"

इनके हृदय में भक्ति का नया उदय हुआ था। यह इसी रात में शिव को रिझा लेना चाहते थे। नींद आती पर पानी के छींटों से उसे दूर भगाते। इतने में एक चूहे ने सचेत किया! उस क्षुद्र पशु को महान् पशुपति के आगे उद्धत होता देखकर विचार आया- हो न हो यह शिव नहीं। दूसरों का व्रतभंग आलस्य ने किया था इनका तर्क ने। तर्क जीवन की भूमिका थी, आलस्य मौत की। शिवरात्रि बीत गई, परन्तु शिवरात्रि की घटना हृदय में गड़-सी गई।

मूलशंकर के बढ़ते यौवन को दूसरी चेतावनी उनके चाचा और भगिनी की मृत्यु से मिली। चाचा के लाडले थे, उनका वियोग सहा न जाता था, भगिनी को महामारी ने मारा। इन दो मौतों का प्रभाव एक-सा नहीं हुआ। प्रथम, मृत्यु पर आश्चर्य चकित रहे और पाषाण-हृदय की उपाधि पाई, दूसरी पर बिलख-बिलख कर रोए।

शिक्षा और गृहत्याग- मूलशंकर की शिक्षा का प्रबन्ध इनके बाल्यकाल में किया गया था। इन्हें यजुर्वेद कण्ठस्थ था और भी बहुत कुछ पढ़ा-लिखा करते थे। पिता को पता लगा कि बालक पर वैराग्य का भूत सवार है। महात्मा बुद्ध के पिता की तरह इन्हें विवाह की डोरों में फांसने की ठानी। परन्तु ठीक विवाह की रात्रि को मूलशंकर घर से लुप्त हो गए।

वन यात्रा- मूलशंकर की कथा बहुत लम्बी है। पहले तो किसी ने ठग लिया। इन्हें शुद्ध चेतन नाम देकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनाया। फिर यह संन्यासी हुए और दयानन्द नाम पाया। योगियों के पास योग साधना सीखते रहे। समाधि का आनन्द लाभ किया। गिरी-गुहाओं में घण्टों बिताए। पुस्तकें खोजीं और उनका अध्ययन किया। मैदानों में सोए, वृक्षों की शाखाओं में विश्राम किया। मूलकन्द खाकर भूख मिटाई। सार यह कि पूर्ण वनचर का-सा जीवन व्यतीत किया।

गुरु विरजानन्द के चरणों में- ३६ वर्ष से ऊपर के थे जब दण्डी विरजानन्द के द्वार पर विद्यावित्त के भिक्षु हुए। वहां पहली भेंट यह करनी पड़ी कि जो पुस्तक पढ़े हैं सब यमुना मय्या के अर्पण करो। हाथ लिखे पुस्तक बड़ी कठिनता से हाथ आए थे। पर गुरु-मुख का उपदेश भी तो सुलभ न था। जी कड़ा किया और गुरु की आज्ञा पालन की। आदर्श शिष्य आदर्श गुरु के चरणों में आदर्श शिक्षा प्राप्त कर रहा था। नित्य प्रति यमुना के जल से गुरु जी को स्नान कराते। कुटी में झाड़ू देते, गुरु की सेवा शुश्रुषा करते। गुरु ने एक दिन डण्ड से ताड़ना की, यतिवर ने गुरु-गौरव का प्रसाद मान स्वीकार की। अन्त में दीक्षान्त का समय आया। निर्धन ब्रह्मचारी गुरुदक्षिणार्थ लोगों की भीख मांग लाया। हां दैव! स्वीकार न हुई। 'क्या भेंट करूँ।' जो तुम्हारे पास हो। 'मेरे पास मेरे अपने सिवा कुछ नहीं।' 'तो अपने आप भेंट करो।' भेंट करी की। गुरु ने अंगीकार की। वही अपने आपकी भेंट मानो आर्य-समाज की स्थापना का प्रथम बीज थी। 'दयानन्द विरजानन्द का हुआ और विरजानन्द के हाथों सारे संसार का।'

पाखण्ड खण्डनी- अब पुष्कर के मेले में दयानन्द पहुंचता है, कुम्भ के महोत्सव सब में दयानन्द गरजता है। वेद से उलटे जाते वैदिकधर्मियों को वेद के पथ पर लाना चाहता है। एक ओर सारी भ्रान्त आर्य जाति है दूसरी ओर अकेला दण्डधारी दयानन्द। 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' के नीचे खड़ा कौपीनधारी ब्रह्मचारी

आते जाते के लिए अचम्भा था। लोग कहते थे, गंगा के प्रवाह को रोकने का सामर्थ्य इसमें कहाँ ? स्वयं भगीरथ आएं तो न रोक सकें।

तपस्या की पराकाष्ठा- ऋषि गरज-गरज कर हार गए। गंगा बहती गई और उसके साथ हिन्दू भ्रान्तियों का प्रवाह भी बहता गया। ऋषि ने डेरा डण्डा उठाया और वनों की राह ली। पूर्ण वीतराग होने का व्रत किया कि कौपीन के अतिरिक्त कोई चीज पास न रखेंगे। महाभाष्य की एक प्रति पास थी, सो भी गुरुवर की सेवा में भेज दी। इसी कौपीन में दयानन्द सोते, इसी में फिरते। नहाकर इसे सूखने को डालते और स्वयं पद्मासन लगाकर बैठे रहते। हिमाच्छन्ल नालों में क्या और जलती रेतों पर क्या दयानन्द का यही पहरावा रहा।

शास्त्रार्थ- कोई दो वर्ष दयानन्द ने इसी प्रकार तितिक्षा में काटे। फिर प्रचार में प्रवृत्त हुए। शास्त्रार्थ पर शास्त्रार्थ करते चले गए। हीरावल्लभ नाम के एक प्रौढ़ पण्डित ने सप्ताह भर संस्कृत में शास्त्रार्थ किया। उनका संकल्प था कि ऋषि से मूर्ति को भोग लगवा कर उठूंगा। ऋषि का पक्ष सुना तो ठाकुर जी को उठाकर गंगा में प्रवाहित किया और मुक्त कण्ठ से माना कि मूर्ति-पूजा शास्त्र विरुद्ध है।

ऋषि के उपदेश में जादू था। कण्ठियां उतरवा दी, मूर्तियां फिंकवा दीं, तिलक छाप की रीति मिटा दी। गायत्री का प्रचार किया। सन्ध्या-लिख लिख बांटी। स्त्रियों को मन्त्र जाप का अधिकार दिया। जाटों, राजपूतों को यज्ञोपवीत पहनाए।

आर्य धर्म की जय- चान्दपुर के शास्त्रार्थ में ऋषि ने आर्य जाति के इतिहास में एक नए युग का बीजारोपण किया। आर्य-आर्य तो आपस में विवाद करते ही थे। मुसलमानों, ईसाइयों से इनकी कभी न ठनी थी। इससे पूर्व प्रथा यह थी कि अहिन्दू हिन्दुओं का खण्डन करे और हिन्दू चुप रहकर सहन करते जाएं। आर्य धर्म आटे का दीया था। कच्चा धागा था, इसने इस भ्रान्ति को मिटा दिया। तीन दिन शास्त्रार्थ होना था। जिसमें मौलवियों और पादरियों के विरुद्ध ऋषि ने आर्य धर्म का पक्ष लेना स्वीकार किया था। एक ही दिन में ऋषि ने आर्य धर्म की स्थापना ऐसी दृढ़ता से की कि दूसरे दिन वहां प्रतिपक्षियों का चिन्हमात्र भी शेष न था। आर्य धर्म की यह विजय धर्म के इतिहास में स्वराक्षरों में लिखने योग्य है।

अन्य मत वालों पर कृपा- ऋषि ने ईसाइयों को निमन्त्रण दिया कि आर्य धर्म को परखो और स्वीकार करो। इस निमन्त्रण में मोहिनी शक्ति थी। सर सैयद ऋषि के चरणों में आते। पादरी स्काट ऋषि के दर्शन करते। पादरी को ऋषि 'भक्त स्काट' कहते। भक्त की अनुपम उपाधि किसी आर्य-समाजी को न मिली, एक ईसाई ऋषि-भक्ति का यह अपूर्व प्रसाद ले गया। मुहम्मद उमर जन्म का मुसलमान था। उसे ऋषि ने अपने हाथों आर्य बनाया और अलखधारी नाम रखा। सारे संसार के लिए आर्य धर्म का द्वार खोलने का श्रेय वर्तमान युग में ऋषि दयानन्द ही को है। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लवैटस्की अमेरिका से चलकर ऋषि दयानन्द के चरणों में आए। अपने पत्रों में ऋषि को 'गुरुदेव' कहकर सम्बोधित करते थे।

बन्धन काटने वाला- एक दिन एक ब्राह्मण ने पान का बीड़ा ला दिया। चबाने से प्रतीत हुआ कि इसमें विष है। ऋषि उठे, गंगा पास थी, उस पर जाकर न्योली कर्म किया और विष निकाल दिया। सैयद मुहम्मद तहसीलदार था। उसने दोषी को पकड़वाया और दयानन्द के दरबार में ले गया। ऋषि से यह सहा न गया कि किसी को उनके कारण बन्धन में डाला जाए। क्या दयापूर्ण उत्तर दिया- "मेरा काम तो बन्धन काटना है, बन्धन बढ़ाना नहीं।"

बाल ब्रह्मचारी का बल- ऋषि जिस धर्म का प्रचार करना चाहते थे वह उनके जीवन में मूर्तरूप में विद्यमान था। दयानन्द का सबसे बड़ा बल ब्रह्मचर्य बल था। बाल ब्रह्मचारी को अधिकार था कि व्यभिचारियों को डांटे। विक्रम सिंह ने ब्रह्मचर्य बल का प्रमाण चाहा तो उसकी दो घोड़े की गाड़ी एक हाथ से पकड़कर रोक दी। सांईस बल लगाता है, घोड़े यतन करते हैं, परन्तु गाड़ी हिलने में नहीं आती। पीछे की ओर देखा ऋषिवर गाड़ी रोके खड़े हैं। शरीर से तेज बरसता है। मुख कांति टकटकी लगाकर

देखी नहीं जाती।

देवी पूजा- ब्रह्मचारी है और देवियों का आदर करता है। एक नन्ही लड़की बालकों के साथ खेल रही है। ऋषि देखते ही सिर झुका देते हैं। देखने वालों को धोखा है कि सामने खड़े वृक्ष को प्रणाम है, देवता-निन्दक को देवता की परोक्ष शक्ति ने देवता-पूजक बनाया है। ऋषि के मुख से सुनना ही था कि 'वह देखो! वह नन्ही बालिका मूर्त मातृ-शक्ति है।' बस! सभी के मुख से निकला 'धन्य! धन्य!! देवियों के सत्कार-स्वरूप बाल ब्रह्मचारी दयानन्द धन्य!' इस एक घटना में दयानन्द के देवियों के प्रति सम्पूर्ण भावों का मूर्त चित्र चित्रित है। देवियों की शिक्षा हो और शिक्षा के साथ पूजा हो- ये दो सूत्र ऋषि के देवी सम्बन्धी सिद्धान्त का सार है।

अछूत कोई नहीं- दयानन्द की दृष्टि में कोई अछूत न था। उमेदा नाई खाना लाया तो भरी सभा में स्वीकार किया। भक्त की भावना गेंहू के आटे में गुंधी थी, जो भक्त वत्सल की दृष्टि में लाख जन्माभिमानो की अपेक्षा अधिक सम्मान के योग्य थी। कसाई (मजहबी सिख) को किसी ने व्याख्यान सभा से हटाया। कहा- 'नहीं! मेरा व्याख्यान कसाइयों के लिए भी है।'

क्या आप जानते हैं कि सबसे पहला मलकाना रुस्तमसिंह किन शुभ कर-कमलों द्वारा पुनीत यज्ञोपवीत से अलंकृत हुआ था? ऋषि दयानन्द की दया बल-बली भुजाओं ने उसे अस्पृश्यता की गहरी गुहा से उठाया और आर्यत्व के पुण्ड शिखर पर बैठाया।

गोरक्षा- ऋषि का करुणाक्षेत्र मनुष्य जाति तक परमित नहीं था। प्राणिमात्र दयानन्द की दया के पात्र थे। ऋषि ने गोरक्षा के लिए भरसक प्रयत्न किया। एक निवेदन पत्र पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई- सबके हस्ताक्षर कराए कि गो-हत्या राजनियम से बन्द की जाए। ऋषि ने अपने नाम को सार्थक किया, जब दातारपुर के बाहर सड़क पर जाते हुए बैलगाड़ी कीचड़ में धंसी। गाड़ीवान का और बस न चलता था। बैलों पर सोटों की वर्षा करता चला जाता था। बैलों ने बहुतेरी गर्दनें हिलाई, कन्धों पर बहुतेरा दबाव डाला, पर गाड़ी न खींची। गाड़ीवान हारकर रह गया। ऋषि को अधिक दया गाड़ीवान पर आई या बैलों पर- यह कहना कठिन है। दोनों के हृदय कृतज्ञता भार से आभारी थे, जब राजों-महाराजों के गुरु लोकमान्य दयानन्द ने स्वयं कीचड़ में उतर बैलों का जुआ अपनी गर्दन पर डाला और जो भार दो बैलों से न खींचा गया था, अकेले अपने भुजाबल के जौहर से बाहर कर दिया।

ऋषि की लीला बाहुबली लीला है। जिस पक्ष पर दृष्टि डालो वही कहता है, मैं सबसे मीठा हूं। वस्तुतः गुड़ जहां से खाओ मीठा लगता है। इस लीला के अवसान में भी वह महत्त्व है जो और मनुष्यों के जीवन में नहीं।

प्रचार की धुन- ऋषि दयानन्द ने अन्तिम यात्रा जोधपुर की ओर की! इस समय तक ऋषि ने बीसियों आर्यसमाजों की स्थापना कर ली थी। पंजाब, पश्चिमोत्तर (वर्तमान संयुक्त प्रान्त), राजपूताना- ये सब प्रदेश चरणों में सिर झुका चुके थे। कितने राजपूत नरेश शिष्य बन चुके थे। जोधपुर में भी महाराज ने बुलाया था। चरण-सेवकों ने विनय की, "वहां के लोग क्रूर स्वभाव के पुरूष हैं, आपकी शिक्षा का गौरव नहीं समझेंगे। सम्भव है, प्राणो के बैरी हो जाएं।" दयावीर दयानन्द ने उत्तर दिया- "तभी तो जा रहा हूँ। बिगड़ों के सुधार की और अधिक आवश्यकता है। रही मेरे प्राण-घात की बात, सो तो यदि मेरी एक-एक उंगली से बत्ती का काम लिया जाए, और इसी से किसी को सीधा रास्ता सूझ जाए तो मेरे जीवन का प्रयोजन इसी बात में सिद्ध हो गया।" कहने की आवश्यकता नहीं कि ऋषि के पहुंचते ही राजा चरणों का भक्त हो गया, प्रजा अनुरागरक्त हो गई। प्रतिदिन आनन्द वर्षा होने लगी।

निर्भयता- एक दिन राजा ने महारजा को अपने डेरे पर निमन्त्रित किया। ऋषि बिना सूचना दिए जा पहुंचे। राजा के दरबार में उसकी प्यारी वेश्या नन्हीं जान आई हुई थी। राजा खिसियाने हुए। उसे पालकी में बैठाकर उठवा तो दिया परन्तु ऋषि से आंखें चार न हो सकीं। ऋषि यह कुत्सित दृश्य देखकर लाल हो गए। गरजकर कहा- "सिंह की गोद में कुतियों का क्या काम?"

दया आदर्श- यह निर्भयता ऋषि के लिए विष सिद्ध हुई। विरोधियों ने दल बना लिया। कुछ दिनों में ही जगन्नाथ रसोइए को घूस देकर वीतराग योगी-राज को विष दिलवा दिया। ऋषि ने उस समय भी अपनी स्वाभाविक दया से काम लिया। जगन्नाथ ने स्वयं माना, 'ऋषिवर! यह अपराध मुझसे हुआ है।' ऋषि ने उसे धन दिया और आग्रहपूर्वक कहा शीघ्र आंगल राज्य से बाहर हो जाओ। जिससे तुम्हारे प्राणों पर संकट न आए।

विष का प्रभाव धीरे-धीरे हुआ। दस्त आने लगे, पेट का शूल बढ़ता गया। बार-बार मूर्छा होने लगी। महीना भर यह क्लेश रहा। वैद्य चकित थे कि इस वेदना में ऋषि सन्तोषपूर्वक जी रहे हैं। यह ऋषि का चमत्कार था।

देहावसान- जोधपुर से आबू और आबू से अजमेर गए। दीवाली की सायंकाल को, जहां घर-बार गली-बाजार में दीपक जलाए गए, यह जाति-कुलदीप, संसार-समुद्र का ज्योति-स्तम्भ देखते-देखते जगमगाती चकाचोंध से चुंधियाती रात्रि में अन्तर्हित हो गया। देखने वालों ने देखा कि बुझते दीपक ने सम्भाल लिया। मृत्यु समय समीप आया देखकर ऋषि सचेत हुए। क्षीर कराया, शरीर पौंछवाया, चनों का रस लिया, प्रभु का भजन, मन्त्रों का पाठ करते रहे। अन्त में "परमेश्वर! तैने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो।" यह शब्द कहे और अत्यन्त आह्लादपूर्वक प्राण त्याग दिए।

देह छोड़ते समय दयानन्द के मुख पर एक विचित्र क्रान्ति थी। पूर्ण किए कर्त्तव्यों का सन्तोष छाती को उभारे हुए था। जगज्जनक कि गोदी में परम पिता का प्यारा पुत्र लालायित हृदय साथ लिए लौट रहा था। पिता की आज्ञा का पालन किया है, यह आह्लाद था, शान्ति थी, सन्तोष था।

दृष्टि रसायन- जीवन प्रचार के अर्पण हुआ था, मरण भी प्रचार का साधन हुआ। गुरुदत्त एम.ए.पंजाब यूनिवर्सिटी में प्रथम रहे थे, उनकी यह ऋषि से प्रथम भेंट थी। बातचीत नहीं हुई, शंका-समाधान नहीं हुआ, प्रश्नोत्तर का अवसर नहीं मिला, परन्तु चंचल, शंका का अवतार, तर्क-मूर्ति, गुरुदत्त ऋषि पर आसक्त है। उसे कोई सन्देह नहीं रहा, क्षण मात्र में उसकी काया पलट हो गई है एक दृष्टि ने कुछ का कुछ कर दिया।

ऋषि की दृष्टि रसायन है। आओ, उस दृष्टि के दर्शन करो। खोटा सिक्का है? लाओ, खरा सोना हो जाएगा। ऋषि के जीवन के अध्ययन से शिक्षा लाभ करो। उनके ग्रन्थों को पढ़ो और उनके जीवन का मिलान उनके लेखों से करो। भर्तृहरि ने कहा है :

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।

यह वाक्य ऋषि दयानन्द के महत्त्व का सार है।

अमर दयानन्द- आज केवल भारत ही नहीं, सारे धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक संसार पर दयानन्द का सिक्का है। मतों के प्रचारकों ने अपने मन्तव्य बदल लिए हैं, धर्म पुस्तकों के अर्थों का संशोधन किया है। महापुरुषों की जीवनियों में परिवर्तन किया है। ऋषि का जीवन इन जीवनियों में बोलता है, ऋषि मरा नहीं करते, अपने भावों के रूप में जीते हैं। दलितोद्धार का प्राण कौन है? पतित पावन दयानन्द। समाज सुधार की जान कौन है? आदर्श सुधारक दयानन्द। शिक्षा प्रचार की प्रेरणा कहां से आती है? गुरुवर दयानन्द के आचरण से। वेद का जय-जयकार कौन पुकारता है? महर्षि दयानन्द। देवी सत्कार का मार्ग कौन दिखाता है? देवीपूजक दयानन्द। ब्रह्मचर्य का आदर्श कौन है? बाल-ब्रह्मचारी दयानन्द। गोरक्षा के मिष से प्राणिमात्र पर करुणा दिखाने का बीड़ा कौन उठाता है? करुणानिधि दयानन्द। आओ, हम अपने आपको ऋषि के रंग में रंगें। हमारा विचार ऋषि का विचार हो, हमारा आचार ऋषि का आचार हो, हमारा प्रचार ऋषि का प्रचार हो। हमारी प्रत्येक चेष्टा ऋषि की चेष्टा हो। नाड़ी-नाड़ी से ध्वनि उठे :- ऋषि दयानन्द की जय!

#swamidayanand #ARYASAMAJ

[स्त्रोत- आर्य मर्यादा : आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र का मार्च २०२० का अंक ; प्रस्तुति-

प्रियांशु सेठ]